# मीरा का प्रेम

*एक मित्र ने प्रश्न पूछा है :*

*'एक महिला ने मीरा पर महानिबंध लिखा है। उसने उसमें कहा है कि मीरा एक साधारण औरत थी और उसका गोपाल पांच हजार साल पहले हुआ कृष्ण नहीं था। लेकिन जो साधु उसके घर आया था, वह उसी साधु के प्रेम में पड़ गई थी। और उस समय वह पांच साल की नहीं थी, बल्कि युवती थी।*

*आप के बारे में भी समाज में एक बड़ा हिस्सा मानता है कि आप धर्म की आड़ में निर्बंध कामाचार को प्रोत्साहन दे रहे हैं। क्या प्रत्येक ज्ञानी का मार्ग इसी प्रकार के क्लिष्ट धुएं से आच्छादित रहता है?'*

अब जिस महिला ने मीरा पर यह खोज की होगी, यह खोज उसी महिला के संबंध में है, मीरा के संबंध में जरा भी नहीं है। और मुझे उस बेचारी पर दया आती है। नाम तो उन्होंने लिखा नहीं, जिसने यह महानिबंध लिखा है। उस पर मुझे दया आती है। लगता है, उसे साधु भी नहीं मिला। खुद साधु मिल जाता तो महानिबंध लिखने में समय खराब करती...? तो मीरा पर महानिबंध लिखने की जरूरत क्या है?

अब यह बड़े मजे की बात है। एक तो मीरा गलत; उसकी जिंदगी खराब गई इसके हिसाब से। और यह अपनी जिंदगी खराब कर रही है उस पर महानिबंध लिखकर! महानिबंध लिखने में वक्त लगता है—तीन-चार साल, पांच साल। ये पांच साल किसलिये खराब करते हो? मगर यह जो महिला लिखी होगी किताब, ये उन्हीं तथाकथित मनस्विदों के आधार पर कही गई बातें हैं।

अब पहली तो बात यह है कि मीरा को समझने के लिये मीरा जैसी भाव-दशा चाहिये। मीरा को समझने के लिये किसी यूनिवर्सिटी की डिग्री की कोई जरूरत नहीं है। मीरा के पास कोई डिग्री नहीं थी। मीरा को समझने के लिये मीरा का भाव चाहिये। बजाये इन देवी को कि ये महानिबंध लिखें, थोड़ा भक्ति-भाव सीखें, साधु-संगत करें; किसी साधु के प्रेम में पड़ें; थोड़ा बिगड़ें, कुछ रस लगे। कुछ धुन पकड़े और किसी दिन अपने को पाएं नाचते मीरा जैसा—तो कुछ समझ में आयेगी बात; तो रास्ता खुलेगा। नहीं तो यह निष्कर्ष स्वाभाविक है।

यह बिलकुल स्वाभाविक है कि पांच हजार साल पहले कृष्ण हुए—अब पांच हजार साल पहले हुए कृष्ण को कैसे तो प्रेम करोगे? क्योंकि हमारा प्रेम तो बड़ा भौतिक अर्थ का होता है; शारीरिक होता है। हमारी धारणा उतनी है कि बस शरीर से होता है। शरीर से ही जो प्रेम होता है, वह कैसे मान सकता है कि पांच हजार साल के फासले पर प्रेम हो सकता है!

अब यह बड़ी मुश्किल है। यह ऐसा ही है जैसे अन्धे आदमी को समझाओ कि रोशनी होती है—ऐसे ही उसको समझाना, जिसको केवल शारीरिक प्रेम का ही पता है। उसको समझाना मुश्किल है कि प्रेम अनंत काल

की दूरी पर भी हो सकता है। प्रेम के लिये कोई बाधा न समय की है और न काल की है। प्रेम के लिये अगर कोई बाधा है तो सिर्फ अहंकार की है; और कोई बाधा नहीं है। सिवाय अहंकार के और कोई चीज प्रेम में बाधा बनती ही नहीं। अगर यह अकड़ है कि मैं हूं कुछ, तो भर प्रेम नहीं होता। फिर चाहे तुम्हारा प्रेमी तुम्हारे पास ही क्यों न बैठा हो; गलबांही डाले क्यों न बैठा हो। अगर अहंकार है तो प्रेम नहीं होता। पास बैठे रहो, शरीर से लगाया हुआ शरीर लगा हो, बैठा हो, तो भी प्रेम नहीं होता। अगर अहंकार है तो इतना बड़ा फासला है कि उसको पूरा नहीं किया जा सकता। और अगर अहंकार नहीं है—और वही तो भक्ति का सूत्र है—तो फिर कोई फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण पांच हजार साल पहले हुए हों या पचास साल पहले हों, कोई फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण यहां हों कि किसी और चांद-तारे पर हों, कोई फर्क नहीं पड़ता।

तो पहले तो इन देवी का यह कहना कि मीरा एक साधारण औरत थी, सिर्फ अपने संबंध में संकेत देना है।

दूसरी बात : मुझसे अगर कोई कहे तो मैं कोई साधारण औरत को, कुछ बुरा नहीं मानता। सभी साधारण हैं। असाधारण का क्या अर्थ होता है? असाधारण का इतना ही अर्थ होता है—जिसने अपनी साधारणता को पहचान लिया, वही असाधारण हो गया। जिसने अपनी निर-अहंकारिता को पहचान लिया वही असाधारण हो गया। असाधारण का अर्थ होता है—अपनी साधारणता में मस्त हो गये।

मीरा को साधारण औरत कहने से यह महिला ही साधारण हो जाती है। अपने को साधारण जान लो, तो असाधारण हो जाओ। और मीरा ने अपने को बड़ा साधारण माना है। इतना ही कहती है कि हे प्रभु, मुझे चाकर रख लो; मुझे नौकर रख लो; मैं तुम्हारे पैर दबा दूंगी; मैं तुम्हारा काम कर दूंगी; सेवा-टहल कर लाऊंगी। मुझे चाकर राखो जी! और तो कुछ मांगती नहीं। कुछ तो मांग नहीं है मीरा की।

तो पहले तो मैं कहूंगा : मीरा को कोई भी दंभ नहीं है असाधारण होने का। यही उसकी असाधारणता है। वह बिलकुल साधारण है।

दूसरी बात इन देवी ने खोज की कि जो साधु उसके घर आया था, वह उसी साधु के प्रेम में पड़ गई थी; वह पांच हजार साल पहले हुए कृष्ण के प्रेम में नहीं थी। लेकिन इस साधु में भी कृष्ण उतने ही हैं। इस साधु की कोई खराबी है? इसका कोई कसूर? इस साधु के भी प्रेम में अगर मीरा पड़ जाये, तो इन देवी को कोई अड़चन मालूम होती है? कृष्ण तो सर्वव्याप्त है। कृष्ण कोई व्यक्ति का नाम थोड़ ही है।

अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं ऐसा नहीं कहूंगा, कि कृष्ण से प्रेम करो। मैं कहूंगा : प्रेम करो; जिससे प्रेम हो जाये वही कृष्ण है। कृष्ण से थोड़े ही प्रेम होता है; प्रेम से कृष्ण होते हैं। क्या फर्क पड़ता है? ठीक, चलो। यह अनाम साधु जो आया था, इसके प्रेम में पड़ गई होगी। तो भी कुछ हर्जा नहीं। प्रेम में पड़ गई, यह बात पक्की है। और प्रेम में पड़ गई कि मीरा—मीरा हो गई। किसके प्रेम में पड़ी, क्या फर्क पड़ता है? यहां नाम-धाम का ही फर्क है, बाकी तो एक ही बसा है। मगर इन देवी की चेष्टा यह है कि कृष्ण का प्रेम कुछ खास; कृष्ण का प्रेम होता तो चलो क्षमा कर देतीं ये उसको; मान लेतीं कि चलो, ठीक है, चलने दो। मगर साधु! साधु में तुम्हें परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता। तो कृष्ण में ही ऐसी क्या खूबी थी? ग्वाले थे!

किसी को कृष्ण की निंदा करनी हो तो क्या अड़चन है?—कि इस ग्वाले के प्रेम में पड़ गई! साधु भी उनका ही रूप है।

मगर यह इस कोशिश में ही लगी है कि किसी तरह मीरा को छोटा सिद्ध करना है। कहीं इन देवी को चोट लग रही होगी। शायद ये भी कुछ तुकबंदी वगैरह जानती हों, तो शायद सोचती हों कि ये भी कुछ कवि इत्यादि हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मुझसे बात कर रहा था। ऐसे साहित्य की बात चल पड़ी तो कहने लगा कि उर्दू साहित्य की हालत बड़ी खराब है। मैंने पूछा : मतलब? तो उसने पूछा कि अब आप तो जानते ही हैं, मिर्जा गालिब को मरे कितना समय हो गया! फिर इकबाल भी चले गये। और फिर मेरी भी तबीयत कुछ दिनों से ठीक नहीं रहती। बस उर्दू साहित्य पूरा हो गया! 'इधर कुछ दिनों से मेरी तबीयत भी ठीक नहीं रहती! उर्दू साहित्य की हालत बड़ी खराब है!' शायद कुछ तुकबंदी इन देवी को भी आती होगी। मीरा से अड़चन पड़ती होगी। मीरा को किसी तरह नीचे लाना जरूरी है!

*मीरा को समझने के लिये मीरा जैसी भाव-दशा चाहिये। मीरा को समझने के लिये किसी यूनिवर्सिटी की डिग्री की कोई जरूरत नहीं है। मीरा के पास कोई डिग्री नहीं थी। मीरा को समझने के लिये मीरा का भाव चाहिये*

तुम ध्यान रखना : संतों की निंदा में अक्सर कारण यही होता है : ईर्ष्या। यह बात मानना बहुत कठिन होती है अहंकार को कि कोई हमसे ऊपर। खींचो! किसी भी तरह खींचो!

इसलिये संतों की जब भी निंदा चलती है, तुम तत्क्षण मान लेते हो। तुम फिर खोजबीन ही नहीं करते। फिर कोई फिक्र ही नहीं करता—इस बात की खोजबीन करने की कि इसमें सच्चाई कितनी है।

निंदा हम तत्क्षण स्वीकार करते हैं। प्रशंसा—हम एकदम ठिठक जाते हैं। हम कहते हैं : 'प्रशंसा! यह हो नहीं सकता।' अच्छा तो हो ही नहीं सकता, हमारी यह मान्यता है। यह तो सिद्ध सिद्धांत है हमारा कि शुभ तो यहां होता ही नहीं; अशुभ ही होता है। अशुभ कोई कहे तो हम मान लेते हैं। शुभ की कोई खबर दे, हम लाख झंझटें खड़ी करते हैं, तर्क उठाते हैं।

इसलिए उनको यह भी अड़चन है। वे कहती हैं कि 'साधु के प्रेम में पड़ गई थी—जो साधु घर आकर रुका था। और उस समय वह पांच साल की

नहीं थी, बल्कि युवती थी।' यह भी उसको अड़चन रही होगी कि अब पांच साल की अगर मानो, तो फिर यह साधु के प्रेम में पड़ना कुछ जंचेगा नहीं; इसमें कुछ ताल-मेल नहीं बैठेगा। फिर इसको वासना नहीं कहा जा सकेगा। तो मीरा को खींच कर युवती बनाना पड़ता है। हो सकता है, साधु का नाम गोपालदासजी या ऐसा कुछ रहा हो! बाबा गोपालदास! या रणछोड़दासजी! कुछ ऐसा नाम रहा हो और मीरा धोखा दे रही है दुनिया को। पड़ी है इस लफंगे के चक्कर में और बातें कर रही है कृष्ण की। ऐसी उनकी चेष्टा है।

यह चेष्टा क्षुद्र वृत्ति से उठी है। मीरा को समझने के ये ढंग नहीं।

मुझे कुछ अड़चन नहीं है। मीरा अगर जवान रही हो तो और भी अच्छा। इसमें क्या अड़चन है? जवानी में कुछ बुराई नहीं है। जवानी में बुराई होती तो परमात्मा जवानी लाता ही नहीं। परमात्मा जवानी से बहुत खुश है—इसलिये तो जवानी को सौंदर्य देता, प्रतिभा देता, रूप-रंग देता। जब फूल पूरा खिलता है तो कोई कसूर तो नहीं है। कोई बौड़ी जो खिली नहीं है, कोई बड़ी महिमा की बात तो नहीं है। तो पांच साल की बच्ची बौड़ी है। जवान युवती खिल गया फूल है। क्या हर्ज है?

और मीरा किसके प्रेम में पड़ी, यह मुझे अड़चन नहीं आती। हां, दूसरों को अड़चन आयेगी। ऐसे धर्मगुरु तुम्हें मिल जायेंगे जो इसका खंडन करेंगे, कि यह बिलकुल गलत है। मुझे इसमें अड़चन नहीं आती कि किसके प्रेम में पड़ी। प्रेम में पड़ी, यह काफी है। मैं प्रेम का हामी हूं। पक्षपाती हूं। तुम किसी को तो प्रेम करो! तुम प्रेम तो करो! तुम प्रेम का स्वाद तो ले लो। तुम किसी के भी साथ प्रेम का स्वाद ले लो, तुम धीरे-धीरे पाओगे : वहीं से परमात्मा का रास्ता बनना शुरू हो गया। क्योंकि प्रेम उसका रास्ता है। अप्रेम

विपरीत जाना है परमात्मा के; प्रेम, उसके अनुकूल जाना है। जिससे हो जाये, उससे करो। प्रेम के संबंध में शर्तबंदी न रखो।

प्रेम प्रार्थना का प्रथम रूप है; भक्ति की शुरुआत है।

*— ओशो*

*पद घुंघरू बांध*

*दूसरा प्रवचन, तीसरा प्रश्न*

*(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)*